संघर्ष बीना का

शांति व माया

मैं नदी की तरह बहती रही
पहाडों से लाई मिट्टी के बोझे को
पीछे छोड़ते हुए
कुछ नया पुराना जोड़ती रही

अपनी मर्जी से कदम रखने वाली बीना, डटी खड़ी रही पुरानी इमारत की तरह। चाहे युग बीते, राजा बदले, प्रजा हिले, सागर सिमटे, वह खड़ी है गहरी नींव पर टिकी दीवार की तरह। और याद दिलाती रहती है, 'मेरी भी पहचान है'।

चार साल हो गए पति को गुजरे। पर हिम्मत नहीं हारी। अपने पांच बच्चों को खूब पढ़ाने का सपना सजाए इस औरत ने अपने फैसले खुद किए। भाई ने कहा, "नौकरी छोड़ दे तो अच्छा है। जितना पैसा तुझे मिलता है उतना हर महीने मैं दूंगा" पर वह नहीं मानी। "हर महीने भाई तेरे से भीख मांगने आंऊगी, एक दो बार तू देगा, फिर मुंह मोड़ लेगा। मैं किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती।"

अलग सोच

बीना की दोनों बेटियां आज दसवीं और बारहवीं क्लास में आ गई हैं। अपनी मां की तरह वह खुद भी उनके हाथ पीले कर सकती है। उनकी शादी का दबाव झेलते हुए, हंसकर अपने खुद के बचपन के अनुभव हमें बताती है। "मां मेरे साथ दोगलापन करती थी। भाई को दूध, घी, मीट मिलता, मुझे सादी रोटी। पर मैं चोरी-चोरी

खा लेती। मां रात को दूध जमाती तो मैं उसमें नमक डालती। दूध फट जाता, भाई नहीं खाता। मैं उसमें चीनी मिलाकर खा लेती। मन में मां-बाप पर गुस्सा आता। और इसीलिए आज मेरी सोच अलग है।"

बीना के बचपन की चोट समाज की आम सोच में दब जाती। वह भी अपनी लड़कियों के साथ वही करती जो उसके खुद के साथ हुआ था। पर संगठन से जुड़कर उसे लगा, सबके घर की बातें कितनी मिलती थीं। लुका-छिपा गुस्सा हर औरत के मन में था। समाज औरत को घर में धकेल कर रखता है, तभी तो वे पिछड़ जाती हैं। घर का मुखिया आदमी होता है। पर अपनी बेटियों को पढ़ाने का फैसला उसका अपना था। उसे अपनी आमदनी होने से भी सहारा मिला। आदमी ने उसकी ज़िद मान ली क्योंकि दोनों मिलकर कमाते थे। घर में इतना पैसा था कि दोनों लड़कियां पढ़ सकें।

आदमी गुजर गया तब आमदनी कम हो गई। पूरे घर पर असर पड़ा। पर मुसीबतों से वह सीखती चली गई। लड़कियों को पढ़ाने का फैसला

और पक्का होता गया। साथ ही वह एक ऐसे मुकाम पर खड़ी थी जहां एकल हो अपने एकल अनुभवों से औरों को सही सलाह दे पाती थी। यह सलाह उसके मन से उगकर, बेल की तरह घर की मुंडेर पार करके पड़ौस, गली, बस्ती में फैल गई।

दूसरों का सहारा

बहन का पति फांसी लगाकर मर गया। जब बीना वहां पहुंची तो हिम्मत बंधाई। "पति की सरकारी नौकरी तू ले ले। मैं तेरे साथ हूं। सब सीख जाएगी। आज ससुराल वाले नौकरी के चक्कर में तेरे आगे-पीछे घूम रहे हैं। कल घर में भी नहीं रहने देंगे।" बहन के ससुराल वाले एक तरफ, बीना दूसरी तरफ। पर भागा-दौड़ी करके बहन को नौकरी दिलवा दी। ससुराल वालों ने कहा—"उल्टा पाठ पढ़ाती है, परिवार में फूट डालती है।" पर बहन आज तक साथ है, हथेली की रेखा जैसी। "वह भी एकल मैं भी एकल।"

ऐसे ही एक रोज बीना का देवर पड़ौस की जवान लड़की के घर में घुसकर जबर्दस्ती करने लगा। पड़ौसन हो-हल्ला सुनकर उसे ले गई। बीना ने मिलकर उसे थाने में बंद करा दिया। पर जमानत पर देवर छूट गया। उसके घर चाकू लेकर आया। बोला, पेट फाड़ दूंगा। बीना डरी नहीं, बोली, मेरे पेट की खाल बहुत मोटी है, छुरा थोड़ा और पैना करके आ।

अकेलेपन से डर नहीं

एकल होने से क्या डर लगता है? बीना कहती है, "जब से एकल हुई तबसे हिम्मत आ गई। पहले दबती थी कि मर्द के होते बोलूंगी तो लोग अच्छा नहीं कहेंगे। अब जरा भी कोई कहे, धाड़ से मारती हूं। सोचती हूं औरत को मर्द के साथ हिम्मत आनी चाहिए, मगर मर्द का साथ औरत को कमजोर क्यों बनाता है?"

समाज की सोच से कितनी अलग है बीना की सोच। वह समझ गई। मर्द ही औरत को कमजोर बनाता है। औरत के चाल-चलन, बोल-व्यवहार को ही घर की इज्ज़त समझा जाता है। इसी के दबाव से मर्द के रहते बहुत कुछ अपनी मर्जी के खिलाफ करना पड़ता है।

जब मर्द ही नहीं रहा तो इज्ज़त का वजन बीना ने उतार फेंकना चाहा। आस-पड़ौस, रिश्तेदार कहते, पति गुज़रा तो ये आजाद फिरती है। अपनी मर्जी का करती है। घर में सास की दुश्मनी तले जीना मुश्किल था। हर कदम लड़ाई थी। सास की चुप्पी में डर था, बहू मेरे घर का दीया है। उसके बदलते रंगों में कहीं किसी और के घर का उजाला न बन जाए।

सास भी बदली

पर वक्त बदला। होली का त्यौहार आया। पति गुज़र जाने के बाद पहली होली। सहेलियों का झुण्ड आ गया। पर अचानक सहेलियां सहम गईं। बीना का आदमी गुज़र गया था और वे खुश दिख रही थी। कहीं उसकी सास को ठेस न पहुंचे। पर अब एक धागा सास-बहू को बांध गया था। दोनों एकल थीं।

इस समान अनुभव और स्नेह से बंधकर बीना ने चुप रहने से ना कर दी। सास हैरान हो पोते-पोती से कहती, यह तो ऐसी न थी। इसे क्या हुआ। सास खामोश होकर अपना गुस्सा दिखा देती।

ऐसी है यह बीना। हिम्मत, एकल औरत। पल-पल अपने साथ न जाने कितनी ही औरतों को जोड़ती रहती है। □